ISSN: 2456–5474 RNI No.UPBIL/2016/68367 Vol.-5* Issue-7* September- 2020
Innovation The Research Concept

गांधीय विकास मॉडल की उपादेयता

Relevance of Gandhian Development Model

Paper Submission: 10/09/2020, Date of Acceptance: 25/09/2020, Date of Publication: 26/09/2020

सुलोचना
सहायक आचार्य,
राजनीति विज्ञान विभाग,
एस. के. राजकीय कन्या महाविद्यालय, सीकर,
राजस्थान, भारत

सारांश

विकास का सम्बन्ध सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक, नैतिक, पर्यावरणीय संदर्भो से है। विकास लक्ष्यों की पूर्ति एकमात्र गांधीय मॉडल से ही संभव है जो ग्रामोद्योग से आत्मनिर्भर, नैतिक, मूल्याधारित, स्वदेशी और सर्वोदय की जीवन पद्धति बताता है। सतत् विकास के गांधीय प्रतिमान की बात करें तो यह स्वदेशी, सर्वोदय, पारिस्थतिकी रक्षण, मूल्योत्थान, ग्रामस्वराज्य जैसे बिन्दुओं से मिलकर बना है।

Development is related to social, economic, political, cultural, ethical and enviormental contexts. Developmental models can only be achieved by Gandhian Model which spells out self-dependence from Gramodyog, and life-style based on moral values & ideas of swadeshi. Sustainable development stated by Gandhian model includes Swadeshi, Sarvodaya, ecological conservation, value-upliftment and Gramswarajya.

मुख्य शब्द : सतत् विकास, स्वदेशी, सर्वोदय, भूण्डलीकरण, उदारीकरण, निजीकरण, पश्चिमी उदारवादी मॉडल, पूंजीवाद, समाजवाद, भोगवादी संस्कृति, उपनिवेशवाद, पारिस्थतिकी रक्षण, गाँधीवाद, संस्थायन, लौकिकीकरण।

Sustainable Development, Swadeshi, Sarvodaya, Globalisation, Liberalisation, Privatisation, Western Liberal Model, Capitalism, Socialism, Consumeristic Culture, Neo-Colonialism, Ecological Conservation, Gandhism, Institutionalisation.

प्रस्तावना

गाँधी जी राज्यविहीन समाज की स्थापना करना चाहते थे। इसमें सभी व्यक्ति सामाजिक जीवन का स्वयं अपनी इच्छा से नियमन करते हैं, मनुष्यों का इतना अधिक विकास हो जाता है कि वे अपने कर्तव्यों और नियमों का स्वेच्छा पूर्वक पालन करते हैं। गाँधीजी यथार्थवादी होने के कारण उन्होंने इस बात को स्वीकार किया है कि मानव स्वभाव की वर्तमान स्थिति को देखते हुए पूर्ण आदर्श की स्थापना सम्भव नहीं है इसलिए व्यावहारिक दृष्टिकोण से उप आदर्श की कल्पना की गई। गाँधीजी का सामाजिक दृष्टिकोण भी अत्यन्त व्यापक है। इसे वे व्यवहार परक सिद्धान्त ही मानते हैं। वे देश काल परिस्थितियों के अनुसार समस्या के निदान में रचनात्मक प्रतिभा की मीमांसा करते हैं व अहिंसा का कर्मयोग संदेश देते हैं, समस्याओं के दंश विचार वाणी व्यवहार के शुद्ध एकीकरण से ही खत्म किया जा सकता है। गाँधीजी ने कहा था कि अहिंसा के बिना सत्य की भी साधना संभव नहीं है।[1] गाँधीजी ने बराबर इस बात पर बल दिया कि अहिंसा और कायरता दोनों साथ–साथ नहीं चल सकती है। उन्होंने तो यहां तक कहा कि कायरता से हिंसा अच्छी है।''[2] अहिंसा का अर्थ यदि प्रेम होता है तो फिर वहां शोषण और उत्पीड़न का स्थान नहीं होगा।[3] गाँधी जी कहते हैं कि शोषण केवल अन्यायपूर्ण आर्थिक लूट ही नहीं पैदा करता, बल्कि इससे समाज में अस्वस्थ प्रतियोगिता, पारस्परिक संघर्ष, घृणा और विद्वेष आदि प्रादुर्भूत होता है।''[4]

गाँधी जी ने कहा कि, ईश्वर में सजीव श्रद्धा से लक्ष्य की प्राप्ति सरल हो जाती है । ईश्वर में सजीव श्रद्धा होने का अर्थ है मानव–जाति का भ्रातृत्व स्वीकार करना । इसका अर्थ सब धर्मों के लिए समान आदर भाव भी है।''[5] गाँधी जी ईश्वर में जीवन्त विश्वास रखते थे तथा ईश्वर की आस्था दूसरों पर बल पूर्वक ना थोपकर दया व करूणा से मनवाने के इच्छुक थे। गाँधी जी ने कहा कि, ''सब धर्म ईश्वर में आस्था रखते हैं, तात्कालिक आवश्यकता यह नहीं है कि

एक धर्म हो, बल्कि यह है विभिन्न धर्मों के अनुयायियों में परस्पर आदर और सहिष्णुता हो।''[6]

विकास के प्रश्न को सुलझाने हेतु आज तक बहुत से अंशतः सफल प्रयास सैद्धान्तिक–अवधारणात्मक स्तर और व्यावहारिक स्तर पर किए गए हैं। प्रसिद्ध अर्थशास्त्री जैसे ए.जी. फ्रेंक, एम.पी.टोडारो, जी.रेन्स आदि ने विकास के सिद्धान्त को आर्थिक वृद्धि, आय की समानता, रोजगारोत्पादन आदि के संदर्भों में समझा है, वहीं ल्युसियन पाई, सिडनी वर्बा, सैम्यूअल पी.हंटिगटन आदि राजमर्मज्ञों ने इसे राजनीतिक सहभागिता, लोकतंत्रीकरण, संस्थायन, लौकिकीकरण आदि के रूप में समझा है। वहीं समाजशास्त्री विकास का तात्पर्य प्रजातीय अभिकृतियों, शहरीकरण, सामाजिक परिवर्तन आदि के रूप में समझते हैं। ये सारी व्याख्याएं अन्तः अनुशासनात्मक विभेद व्यक्त करती है। इससे भी अधिक यह है कि बहुत से फ्रेमवर्क विकास को परिभाषित व स्पष्ट करने हेतु दिये गये हैं। जैसे मार्क्सवादी–लेनिनवादी, पश्चिम उदारवादी, गांधीय आदि। वस्तुतः द्वितीय विश्वयुद्धोत्तर विश्व में दो ही विकास के प्रतिमान वैश्विक स्तर पर स्वीकारे गए हैं। प्रथमतः पूंजीवादी या पश्चिमी उदारवादी विकास प्रतिमान और द्वितीयतः साम्यवादी या सोवियत संघ का विकास मॉडल। इनमें से मार्क्सवादी–लेनिनवादी प्रतिमान जितनी तीव्रता से स्वीकार्य हुआ, उससे भी ज्यादा तीव्रता से पिछली सदी के अन्तिम डेढ दशकों में तिरोहित भी हो गया। शीतयुद्धोत्तर विश्व और सावियत संघ विखण्डन के बाद पूंजीवाद प्रतिमान ही विकास हेतु एकमात्र स्वीकार्य विकल्प रह गया।

एकलध्रुवीय विश्व में विकास का पश्चिमी उदारवादी मॉडल भूण्डलीकरण, उदारीकरण और निजीकरण के सतम्भी पर फलने–फूलने लगा। अन्तर्राष्ट्रीय वितीय व व्यापारिक संस्थाओं की सदस्यता व्यापक तौर पर ग्रहण की गई एवं स्वतंत्र व्यापार और विदेशी पूंजी निवेश को प्रोत्साहन देने की नीति का अनुसरण प्रारम्भ हुआ। यही वजह रही कि भारत जैसे देश जिसके संविधान की प्रस्तावना में 'समाजवादी' शब्द लगा है, ने भी अपनी व्यवस्थानुसार समाशोधनों सहित पश्चिमी उदारवादी मॉडल को अपना लिया। वस्तुतः ग्लोबल बिलेज की अवधारणा के तहत वैश्वीकरण, उदारीकरण और निजीकरण को विकास का पर्यायवाची मानकर विकास को केवल प्रौद्योगिकी विकास और उत्पादन से जोड़ दिया गया, परिणामतः उपभोक्तावादी संस्कृति का जन्म हुआ। व्यक्ति को बाजार के हवाले कर दिया गया। बहुराष्ट्रीय कम्पनियों का जाल फैलने लगा। अधिक उत्पादन–अधिक उपभोग, उत्पादन–उपभोग की थीम के अनुसरण में पूंजीवादी देशों ने विस्तृत बाजार की तलाश और कच्चे माल व संसाधनों को कब्जाने की तृष्णा में नवोदित एफ्रो–एशियाई लातिनी देशों को अपने चंगुल में लेना शुरू किया। आर्थिक सहायता व ऋण का ऐसा दुष्चक्र चलाया गया कि तृतीय विश्व के अधिकांश देश केवल नाम के लिए ही सम्प्रभु रह गए। यह 'नवउपनिवेशवाद' पूंजीवादी व्यवस्था का ही दुष्परिणाम है।

विकास के दोनों प्रतिमान पूंजीवाद व मार्क्सवादी–लेनिनवादी मॉडल में न तो उत्पादन के उपकरणों और पद्धति में कोई बुनियादी अन्तर था और न ही उनके प्रबंधन में। दोनों के ही मूल में टेलर का वैज्ञानिक प्रबंधन लागू होता है जो मानता है कि एक मजदूर से काम लेते हुए उन्हीं सिद्धान्तों को लागू किया जाना चाहिए जो एक मशीन के पुर्जे पर लागू होते हैं। यह घनघोर पूंजीवादी मान्यता है और लेनिन के मंतव्य से भी यह वैज्ञानिक प्रबंधन न केवल पूंजीवादी विकास का सही रास्ता था बल्कि समाजवादी उत्पादन व्यवस्था की समस्याओं का भी एकमात्र समाधान था। लेनिन की क्रान्ति के बाद की व्यवस्था भी यही स्पष्ट करती है कि उत्पादन प्रबंधन की जिम्मेदारी मजदूरों की नहीं बल्कि राज्य के नौकरशाहों की है। पूंजीवादी व्यवस्था भी नौकरशाही उत्पन्न करती है। दरअसल जिस आधुनिक प्रौद्योगिकी को पूंजीवादी और समाजवादी दोनों अपनाते रहे हैं। वह न केवल मनुष्य का शोषण–दमन करती है, अपितु उसके मानवीय गुणों का भी हनन करती है। इसलिए जहां तक मनुष्य के शोषण–दमन–उत्पीड़न का सवाल है, पूंजीवादी व साम्यवादी व्यवस्थाओं में कोई फर्क नहीं रहा है। दोनों ही व्यवस्थाओं में झूठ, घृणा, डर व लालच बुरी तरह पनपे। एक में उनका विकास मालिकों और उनके वफादार प्रबंधकों में अधिक दिखायी देता है, तो दूसरी में पार्टी नेतृत्व और नौकरशाही में ।

अध्ययन के उद्देश्य

1. अध्ययन का उद्देश्य वैश्विक संदर्भ में विकास के परम्परागत प्रतिमानों की असफलता के कारणों व दुष्परिणामों को जानना है।
2. विकास के गांधीय प्रतिमान के रूप अर्थात, सतत, विकास की अवधारणा और एक मात्र प्रासंगिक विकल्प के रूप में इसकी मीमांसा करना है।
3. प्रशिक्षित व अप्रशिक्षित कृषक व मजदूर की समस्या का नैदानिक अध्ययन करना है।
4. गाँधीवादी विकल्प के माध्यम से वर्तमान समस्या को सुलझाना व वर्तमान समय में चल रहे अनेक आन्दोलनों में गाँधीजी के अस्त्रों के प्रयोग की उपयोगिता का अंकलन करना।
5. उन परिस्थितियों का उल्लेख करना जिनमें गाँधीजी द्वारा दिये गये विरोध के साधन अधिक प्रभावी है।
6. सामाजिक, आर्थिक, नैतिक, राजनैतिक, पर्यावरण, प्रदूषणजनित समस्या में संदर्भ में गाँधीवादी विकल्प का अध्ययन करना।
7. गांवों, शहरों व नगरीकरण के विकास की समस्या के विकल्प का अध्ययन करना।
8. सद्जीवन न्याय एवं लोक कल्याण की समस्या का गाँधीवादी विकल्प के अनुसार नैदानिक उपाय का अध्ययन करना।

परिकल्पना

परिकल्पना के रूप में निम्न अनुत्तरित प्रश्नों का निर्धारण किया गया है–

1. गांधीय विकास प्रतिमान में निहित दार्शनिक मूल्यों की अनुपालना और सतत् विकास के पथ पर चलने से किस प्रकार वैश्विक समस्याओं ग्लोबल वार्मिंग, आर्थिक विषमता नव उपनिवेशवाद आदि पार्थक्यबोध,

मूल्यों का पतन, बाजारवाद, अधिक उत्पादन का समुचित समाधान किया जा सकता है।

2. वर्तमान राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक व नैतिक व्यवस्था में जातिगत समाज के हित संवर्धन की भावना में वृद्वि हुई है तथा राजनीतिक लाभ प्राप्त करने की औचित्यपूर्ण प्रवृति को प्रोत्साहन मिला है जिससे हमारे राष्ट्र व समाज में परिणाम स्वरूप राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक व नैतिक परिदृश्य में परिवर्तन आ रहे हैं, का अध्ययन किया जाना आवश्यक है।
3. वैश्वीकरण, निजीकरण एवं उदारीकरण की आर्थिक नीति ने आर्थिक संसाधनों पर नियन्त्रण को कमजोर किया है का अध्ययन आवश्यक है।
4. सामाजिक, आर्थिक, नैतिक, राजनैतिक, पर्यावरण, प्रदूषणजनित समस्या में संदर्भ में गाँधीवादी विकल्प का अध्ययन।

शोध प्रविधि

प्रस्तुत शोध पत्र मूलतः द्वितीयक सूचना स्रोतों पर आधारित है। शोध पत्र में राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक तथा पर्यावरणीय पक्षों का समुचित विवेचन तथ्यात्मक व अवधारणात्मक दोनों स्तरों पर शामिल है।

सतत् विकास के गांधीय प्रतिमान की बात करें तो यह स्वदेशी, सर्वोदय, पारिस्थितिकी रक्षण, मूल्योत्थान, ग्रामस्वराज्य जैसे बिन्दुओं से मिलकर बना है।

स्वदेशी

वर्तमान में स्थिति यह है कि सभी विकासशील राष्ट्र विकसित व प्रौद्योगिकी सम्पन्न राष्ट्रों के कर्जदार है और अपने प्राकृतिक संसाधनों के बेहतर उपयोग हेतु उन्हें विकसित राष्ट्रों की अनुचित मांगो को मानना पड़ता है। इस समस्या का निदान स्वदेशी में है। स्वदेशी के पीछे गांधीजी की मूल मान्यता यह थी कि प्रत्येक व्यक्ति अपने घर में आवश्यकतानुसार कपास बोए और चरखे व तकली के माध्यम से सूत कातकर वस्त्र बुन लें । इसके साथ अन्य प्रकार के ऐसे ग्रामोद्योग जो स्वयं स्थापनीय हों जैसे मधुमक्खी पालन, चर्मउद्योग आदि जिससे ग्राम स्वयं आत्मनिर्भर हो।

सर्वोदय

वस्तुतः गांधी के ही शब्दों मे सर्वोदय कोरी कल्पना नहीं अपितु साधन व साध्य दोनों ही के रूप में हमारा निर्देशक है । पूंजीवादी विकास प्रतिमान अमीर को और अमीर तथा गरीब को और गरीब करता है मगर सर्वोदय सबकी एक साथ उन्नति चाहता है और वर्गरहित, शोषण रहित समाज की प्रस्थापना करता है ।

ग्रामाधारित लोकतंत्र

पश्चिमी उदारवादी लोकतंत्र जिसकी आलोचना गांधीजी अपने 'हिन्द स्वराज' में करते हैं, दोषों को ग्रामाधारित लोकतंत्र से ही दूर किया जा सकता है । गांधी के अनुसार पश्चिम में ससंद अवसरवादिता, दलबदल, भ्रष्टाचार शोषण को जन्म देने वाली सत्ता है जो अन्ततः पूंजीवाद व केन्द्रीकरण का कारण बनती है । गांधी के अनुसार ग्रामाधारित लोकतंत्र की नींव सत्याग्रह, ग्रामीण उद्योगों का विकास, रचनात्मक समाज, श्रमिकों के अंहिसा संगठन, एक सदनीय विधायिका, व्यस्क मताधिकार, स्वानुशासन आदि तत्वों से मिलकर बनी है ।

गांधी ने कहा था कि,''यदि हमें सर्वोदय के स्पप्न को देखना है, तो सबसे विनम्र एवं निम्न स्तर के भारतीय को इस भूमि के सर्वोच्च व्यक्ति के बराबर का शासक समझना होगा। सभी अपने गाढ़े पसीने की कमाई करेंगे और बुद्धिजीवी श्रम एवं शारीरिक श्रम में कोई भिन्नता नहीं उत्पन्न करेंगे।''[7]

सादा जीवन और प्रकृति–व्यक्ति संवाद

गांधी के अनुसार बनावटीपन की जिन्दगी में तड़क–भड़क और शानोशौकत के लिए सदैव प्राकृतिक संसाधनों का शोषण होता है। सहज व सरल जीवन जो प्रकृति से सामीप्य बनाकर रखने से प्राप्त होता है, कभी भी पर्यावरण प्रदूषण, ग्लोबल वार्मिग, अतिवृष्टि–अनावृष्टि, ओजोन परत संक्षारण जैसी समस्याओं को जन्म नहीं देता है। व्यक्ति को एकादश व्रतों के अनुरूप अपनी आवश्यकताओं को सीमित कर लेना चाहिए।

अर्थ–दर्शन

तकनीकी दृष्टि से गांधी जी ने भले ही अर्थशास्त्र की बात न की हो, परन्तु उन्होंने मानव जाति की चेतना एवं आकांक्षा को सर्वसाधारण तक पहुंचाने में कभी भी चूक नहीं की। गांधी का अर्थ–दर्शन अर्थशास्त्र के ''भौतिक सुखों के अम्बार एवं एकत्रीकरण तथा केन्द्रीयकरण'' से ऊपर उठकर हमें वह दिशा तो अवश्य दिखाता है जिससे हम सत्य, नैतिक एवं अध्यात्म द्वारा पर्याप्तता–प्राप्ति में जुड़े रहकर न्यूनतम भौतिक आवश्यकताओं की पर्याप्ता को प्राप्त करते हुए प्राकृतिक मनुष्य को प्रधानता दें और उसके कल्याण के लिए कार्यरत रहें । गांधी ने लिखा था कि '' हमें यह देखना होगा कि सबसे पहले हमारे ग्रामीण आत्मनिर्भर हों इसके बाद वे अन्य लोगों की पूर्ति करें।''[8] गांधी ने कहा था कि ''इन मनुष्यों का जीवन इतना कठिन हो गया है कि इनमें से बहुत अपने बच्चों को खो देते है, अपनी बेटियों यहां तक कि अपनी पत्नियों को शर्मनाक स्थिति में देखकर भी मूक बने रहते हैं।''[9]

ग्रामाधारित लोकतंत्र

पश्चिमी उदारवादी लोकतंत्र जिसकी आलोचना गांधीजी अपने 'हिन्द स्वराज' में करते हैं, दोषों को ग्रामाधारित लोकतंत्र से ही दूर किया जा सकता है गांधी के अनुसार ग्रामाधारित लोकतंत्र की नींव सत्याग्रह, ग्रामीण उद्योगों का विकास, रचनात्मक समाज, श्रमिकों के अंहिसा संगठन, एक सदनीय विधायिका, व्यस्क मताधिकार, स्वानुशासन आदि तत्वों से मिलकर बनी है। वर्तमान में शस्त्रीकरण और व्यापक मशीनीकरण का जो वतावरण है उसके संदर्भ में गांधी का ग्रामाधारित लोकतंत्र मानवीय विकल्प है क्योंकि गांधी का स्वराज्य आध्यात्मीकरण की वैचारिक आधारशिला पर स्थित है। गांव की जरूरतें पूरी करने के लिए उन्होंने अनेक संस्थायें कायम की थीं और ग्रामवासियों की शारीरिक, आर्थिक, सामाजिक और नैतिक स्थिति सुधारने की उन्होंने भरसक कोशिश की थी।[10] अपनी आवश्यकता की प्रायः सभी वस्तुएं या तो खेतों से पैदा कर लेते थे अथवा अपनी झौंपड़ियों में फलने–फूलने वाली वस्तुओं से उनकी पूर्ति

हो जाती थी ।[11] गांधी जी को गांवो की स्थिति सुधारने की सर्वाधिक आवश्यकता अनुभव हुई । गांधीजी ने ग्रामोद्योग के विकास को अपरिहार्य माना है। ग्रामीण जीवन को पुनः समृद्ध और स्वावलम्बी बनाना चाहते हैं। ग्रामोद्योग यदि लोप हो गया तो भारत के 7 लाख गांवों का सर्वनाश ही समझिये।[12] गांवो में जो लाखों करोड़ो आदमी पड़े हैं उन्हें परिश्रम की चक्की से निकालकर किस प्रकार छुट्टी दिलाई जाये, बल्कि यह है कि उन्हें साल में जो कुछ महीनों का समय योंही बैठे–बैठे में बिताना पड़ता है उसका उपयोग कैसे किया जाये।[13] इसलिए ग्रामोद्योग को विकसित किया जाए। गांव को स्वावलम्बी बनाने के लिए यह आवश्यक है कि गांव के लोग ग्रामोद्योग को अधिक से अधिक उन्नत बनावें जिससे न केवल उनकी आवश्यकताओं की ही पूर्ति हो बल्कि दूसरी ऐसी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए वे धन भी उपार्जित कर सकें।[14] हमें अपने में ग्राम मानस निर्माण करना होगा और अपनी तथा अपनी गृहस्थी की जरूरतों को ग्रामीण दृष्टि से ही देखना होगा।[15] गांधीजी ने खादी में भारत के स्वराज्य के दर्शन किये हैं। जिस तरह से स्वराज्य के हम नहीं छोड़ सकते हैं, उसी प्रकार खादी को भी नहीं छोड़ सकते ।[16] खद्दर का यह अर्थशास्त्र अहिंसा का अर्थशास्त्र है। अहिंसा का हिंसा से मुकाबला नहीं हो सकता ।[17] चरखा तो लंगड़े की लाठी है–सहारा है। भूखे को दाना देने का साधन है। निर्धन स्त्रियों की रक्षा करने वाला किला है।[18] खादी के अर्थशास्त्र की रचना स्वदेश प्रेम भावना और मानवता के तत्व पर हुई है।[19] चरखे से कोई धनवान होने की आशा रखे तो पछतायेगा। यह चरखों का दोष नहीं बल्कि गुण है क्योंकि इससे धन का समान बंटवारा अपने आप ही हो जाता है।[20]

सतत् विकास का गांधीय प्रतिमानः क्यों और क्या ?

अर्थव्यवस्था के उदारीकरण व निजीकरण के वातावरण में गांधीजी द्वारा प्रतिपादित विकास की अवधारणा को राजचिन्तकों, अर्थशास्त्रियों और पश्चिम समर्थक समाजशास्त्रियों ने अप्रांसगिक बताते हुए कहा कि गांधीमार्ग का अनुसरण करने हेतु हमें लौट कर पीछे की ओर जाना पड़ेगा जबकि हम आगे बढने के लिए कृतसंकल्प है। ऐसे में अब इन चिन्तकों को पुनर्विचार करना पड़ेगा कि वे जिस दिशा में बढने की बात कर रहें है वह तो व्यापक प्रदूषण, शोषण, विषमता, बाजारवाद व शस्त्रास्त्र होड़ से सर्वनाश के मुहाने पर खड़ी है। हकीकत यह है कि साम्यवादी मॉडल के पतनोपरान्त पूंजीवादी विकास प्रतिमान के प्रसार व अभिसिंचिन से जो लाभ मानव जाति को प्राप्त हुए है उससे कहीं अधिक हानि उठानी पड़ी है। विकसित–विकासशील देशों के मध्य खाई इतनी गहरी व चौड़ी हो चुकी है कि अब उसे पाटने हेतु यह निश्चित है कि विकासशील देश पश्चिम का अंधानुकरण न करके अपने विशिष्ट विकास प्रतिरूप का निर्माण स्वयं करें। जो उनके साधनों, संस्कृति और उनकी जरूरतों के अनुरूप हो। एशिया,अफ्रीका और लातीनी अमेरिका तीन बड़े महाद्वीप है। इनमें 100 से ज्यादा विकासशील देश स्थित है। सम्भव है कि ये देश अपनी–अपनी विचारधारा और आकांक्षाओं के अनुरूप अपनी अलग–अलग विकास योजनाऐं बनाना चाहें लेकिन निम्नांकित परिस्थितियां और तथ्य ऐसे है जो वस्तुतः इन सभी देशों पर लागू होते हैं।

1. लगभग ये सभी देश कृषि प्रधान और ग्रामीण समुदाय है।
2. इन देशों में प्रायः मशीनों की कमी और जनसंख्या का बाहुल्य है।
3. इसमें से अधिकांश देश आज भी नवउपनिवेशवाद की गिरफ्त में है जिसके फलस्वरूप इनका राजनीतिक, आर्थिक, प्राकृतिक सभी मोर्चों पर शोषण जारी है।
4. ये देश अब भी पूंजी निवेश, मशीनी उपकरण, रासायनिक सामग्री,सैनिक साजोसामान और वैज्ञानिक तथा तकनीकी जानकारी हेतु बहुत हद तक विकसित देशों पर निर्भर है।

इन सामूहिक विशेषताओं के कारण विकासशील देशों की विकासनीति को चार प्रमुख आधारों से जोड़ना होगा –

1. इनकी विकास योजनाएं ग्रामोन्मुखी हो।
2. योजनाएं विकेन्द्रित और श्रमप्रधान हो ताकि उनसे स्थानीय आवश्यकताओं की पूर्ति हो और अतिरिक्त रोजगार उपलब्ध हो।
3. इन्हें केवल बिना शर्त विदेशी सहायता स्वीकार करनी चाहिए ताकि ये देश सहायता राशि का पूरा प्रयोग अपने विकास लक्ष्यों और जरूरतों की पूर्ति हेतु कर सकें।
4. वर्तमान और निकट भविष्य में इन्हें अपने सीमित साधनों के बलबूते पर खाद्यानों में आत्मनिर्भरता व पूर्णरोजगार की स्थिति को प्राथमिकता से पाना है।

गरीबी और पिछड़ेपन को दूर करने के लिए विकासशील देशों में व्यापक निर्माण–कार्यों और विकास–योजनाओं के लिए लागू किए जाने की आवश्यकता है। इसी आवश्यकता के अनुरूप, एशिया, अफ्रीका और लातीनी अमेरिका के लगभग सभी देशों में पिछले दो–तीन दशकों में अनके विकास योजनाएं बनी तथा कार्यान्वित हुई हैं और आज भी चल रही हैं। आज की बढ़ती हुई आवश्यकताओं के सन्दर्भ में औद्योगिक और दूसरे विकास–साधन बहुत सीमित है। साथ ही वर्तमान अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में सर्वत्र मान्य 'राष्ट्रीय हित' के सिद्धान्त का तकाजा है कि हरेक देश अपने अपने हित साधन के लिए स्वयं जिम्मेदार हो। भारत जैसे बड़ी आबादी वाले विकासशील देशों में छोटे उद्योगों से न केवल पूर्णरोजगार की व्यवस्था होती है, बल्कि काम करने वालों को अधिक आत्मसन्तोष भी प्राप्त होता है। उद्योगों के क्षेत्र में गांधीजी ग्रामोद्योग और छोटे उद्योगों को तरजीह देते थे। साथ ही ऐसे उद्योगों द्वारा विदेशों से महंगी और पेचीदा मशीनें मंगाने का व्यय बचता है और देश की आत्म–निर्भरता में वृद्धि होती है। छोटे उद्योगों द्वारा वर्तमान युग के दो और बड़े खतरों को बहुत कुछ घटाया या टाला जा सकता है। ये खतरे हैं–व्यापक औद्योगिक प्रदूषण और परमाणु अस्त्रों द्वारा सर्वनाश की संभावनाएं । गाँधीजी गांवों, सहकारी प्रयासों से छोटे पैमाने पर खेती करने और गांव की दस्तकारियों या आम लोगों द्वारा उपयोगी चीजें बनाए जाने के समर्थक थे। गाँधीजी मशीनी सम्यता के मनुष्य पर अवमूल्यकारी

प्रभाव के साथ–साथ प्रोद्योगिक प्रगति से जुड़ी प्रदूषण और पारिस्थितिक संतुलन में विकार आने जैसी गंभीर समस्याओं से भी अवगत थे। उन्होंने मनुष्यों, पशुओं और पेड़–पौद्यों के बीच एक ऐसे समुचित सम्बन्ध पर बल दिया जिससे मानव–समाज का स्वस्थ विकास हो सके।

प्राकृतिक संसाधनों का पूर्ण दोहन एवं आवश्यकतानुरूप सदुपयोग, प्रन्यास या ट्रस्टीशिप के सिद्धान्त का पालन एवं एक अहिंसात्मक समाज की स्थापना के लक्ष्य की प्राप्ति हेतु आर्थिक संरचना करने के मार्ग को समर्पित मानव–कार्य व पूंजीवाद की समाप्ति, श्रम के कल्याण के मूल्य पर मशीनीकरण का होना या इसे आगे बढ़ाना अहितकर एवं मानवश्रम विरूद्ध मानना।

इन सारे विकास लक्ष्यों की पूर्ति एकमात्र गांधीय मॉडल से ही संभव है जो ग्रामोद्योग से आत्मनिर्भर, नैतिक, मूल्याधारित, स्वदेशी और सर्वोदय की जीवन पद्धति बताता है। सतत् विकास के गांधीय प्रतिमान की बात करें तो यह स्वदेशी, सर्वोदय, पारिस्थतिकी रक्षण, मूल्योत्थान, ग्रामस्वराज्य जैसे बिन्दुओं से मिलकर बना है।

साहित्यावलोकन

एम.सी. बेहड़ा, मेकिंग गांधी रिलेवेन्ट, कॉमनवेल्थ पब्लिशर्स प्राईवेट लि0 नई दिल्ली (2009) इस पुस्तक में विकास की संकल्पना को आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक, आध्यात्मिक आदि आयामों से जोड़कर विकास के गांधीय प्रतिमान के समतुल्य कर दिया गया है। उदारवादी व साम्यवादी मॉडल की अपर्याप्तता, पतन, दुष्प्रभावों और परिवर्तन की आवश्यकता को स्पष्ट करते हुए गांधीय विकास मॉडल या सतत् विकास के गांधीय प्रतिमानों को मानवीय सभ्यता हेतु उपयोगी बताया है।

आर.पी. मिश्रा गांधीयन मॉडल ऑफ डवलपमेन्ट एण्ड वर्ल्ड पीस, कन्सेप्ट पब्लिशिंग कम्पनी, नई दिल्ली (1988) इस पुस्तक में वर्तमान प्रौद्योगिकी द्वारा उपजी समस्याओं यथा गरीबी, सामाजिक विषमता, बेरोजगारी, उपभोक्तावाद, अति उत्पादन आदि का वर्णन किया गया है।

डा0 उपेन्द्र प्रसाद, गांधीवादी समाजवाद, नमन प्रकाशन, नई दिल्ली (2001) इस पुस्तक में कुल दस अध्यायों में पश्चिम व भारत में समाजवाद के रूप भेद का चित्रण किया गया हे। इसके साथ ही गांधीवाद के मौलिक सिधान्तों–न्यासिता, सर्वोदय, स्वदेशी, सत्याग्रह आदि का वर्णन, सामाजिक न्याय के विचार की मीमांसा और क्रांति के वर्गविहीन समाज पर रोशनी डाली गई है। विकास की सर्वोदय से सम्बन्धित करके सभी पक्षों–नैतिक, सामाजिक, आर्थिक आदि को व्याख्या की गई है।

डा0 जी0पी0 नेमा व प्रतापसिंह, गांधीजी का दर्शन, रिसर्च पब्लिकेशन, जयपुर (2003) इस पुस्तक में महात्मा गांधी के आर्थिक सामाजिक व राजनीतिक दर्शन की विशद विवेचना के साथ–साथ वर्तमान भौतिकतावादी युग, विकसित व विकासशील देशों में बढती विषमता के बारे में बताया गया है। विकासशील देशों का अपने लक्ष्यानुसार विकास योजना बनाने पर बल दिया गया है। विकास की समावेशी धारणा में छोटे उद्योगों पर बल देना, ग्रामोध्योग, हरित विकास, आत्मनिर्भरता आदि तत्वों पर प्रकाश डाला गया है।

भवानीदत पंडया, समुचित तकनीक बेहतर भी, कारगर भी, राधाकृष्ण प्रकाशन , नई दिल्ली (1977) इस पुस्तक में चार भागों में आज की दुनिया, संसाधन, तीसरी दुनिया और संगठन तथा स्वामित्व की चर्चा की गई हैं। इसमें उत्पादन की समस्या, शान्ति व स्थायित्व, न्यूक्लियर प्रौदयोगिकी, आर्थिक विषमताएं आदि पर प्रकाश डाला गया है।

नन्दकिषोर आचार्य, सम्भ्यता का विकल्प (गांधी दृष्टि का पुनराविष्कार), वाग्देवी प्रकाशन, बीकानेर (1955) इस पुस्तक में लेखक ने पूंजीवादी व सोवियत समाजों के उत्पादन के उपकरणों व पद्धति तथा प्रबंधन में तात्विक समानता की बात की हैं लेखक ने स्पष्ट किया है कि किस तरह प्रौदयोगिकी जब मनुष्य से बड़ी सत्ता हो जाती है तो वह मनुष्य की स्वतंत्रता का दमन, शक्तियों का शोषण व गरिमा का हनन करती है।

मोहनदास करमचंद गाँधी, संक्षिप्त आत्मकथा, गाँधीजी – इस पुस्तक में गाँधीजी ने अपने सत्य के प्रयोग किए है, उसकी कथा लिखी है। उन्होनें अपने प्रयोगों का पूरा लेखा जनता के सामने प्रकट कर लाभदायक सिद्व करने का प्रयास किया है। आत्म कथा के अन्तर्गत गाँधीजी ने अपने जीवन का वृतान्त प्रस्तुत किया है। इन्होंने अपने बचपन से लेकर युवावस्था, लंदन की पढ़ाई, भारत के बैरिस्टर के रूप में दक्षिण अफ्रीका की यात्रा, हिंद की मुलाकात, विलायत तथा लड़ाई, साबरमती आश्रम की स्थापना, चंपारण, रोलेट एक्त तथा खादी के जनम तक की कथा का वर्णन प्रस्तुत किया है।

प्रो. पूर्णमल (2002) प्रथम संस्करण – दलित संघर्ष और सामाजिक न्याय – विषय पर अपना शोध ग्रन्थ लिखा है जिसमें सामाजिक न्याय की ऐतिहासिक व्याख्या एवं संविधान में वर्णित सामाजिक न्याय के प्रमुख प्रावधानों का विष्लेषण, मनुस्मृति महातमा गाँधी एवं डॉ. अम्बेडकर के विचारों का संकलन दलितोत्थान के सम्बन्ध में राजनीतिक, आर्थिक एवं सामाजिक, सरकारी एवं गैर सरकारी प्रयासों का उल्लेख है।

निष्कर्ष

महात्मा गांधी का जन्म ऐसे युग में हुआ था जिसे औद्योगिक युग की संज्ञा दी गई है। इस युग की सबसे बड़ी विशेषता है–मानवता के ऊपर मशीनों का प्रभुत्व और फलस्वरूप आवश्यकताओं की बहुलता, समाज की विकृति एवं विघटन, सहृदयता एवं सहज मिलन का विलोप तथा स्व अर्थ पालन की उत्कट लालसा। इससे मानव मूल्यों, सामाजिक मूल्यों, राजनीतिक मूल्यों पर धार्मिक मूल्यों को आघात पहुंचता है। इनका अवमूल्यन होता हैं। मानव एव मानवता का ह्रास होता है। गांधी औद्योगिक सभ्यता के इन दोषों से भारतीय जनमानस को दूर ले जाना चाहते थे। गांधी का अर्थ–दर्शन मानव, मानवता एवं समाज के उत्कर्ष का लक्ष्य सामने रखकर ऐसे अर्थतंत्र के निमार्ण की पृष्ठभूमि तैयार करता है जिससे चतुर्मुखी सर्वोत्तम विकास हो, अर्थात् 'सर्वोदय' हो।

गांधी 'श्रम' को सुख एवं संतोष का एक स्त्रोत मानते थे इसलिए उनके अर्थतंत्र का आधार मानव कल्याण था। वह मनुष्य के ऐसे कल्याण में विश्वास रखते

थे जहां श्रम को प्रमुखता मिले, जहां वह असुरक्षित न महसूस करे, जहां उसके श्रम एवं उत्पादन पर उसका पूर नियंत्रण हो तथा जहां उसकी अपनी इच्छा हो और अपनी अलग ही भूमिका हो। इससे मानवता का विकास होगा, श्रम को प्रधानता मिलेगी, उत्पादन आवश्यकतानुरूप होगा, व्यर्थ की प्रतिस्पर्द्धा नहीं होगी और मनुष्य के जीने के लिए ऐसा मार्ग प्रशस्त हेागा जिसमें वह स्वयं तो जियेगा ही, साथ–ही–साथ उसका परिवार, समाज और राष्ट्र तथा विश्व भी जिएगा और ऐसे जीने में उसके सभी आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक एवं राजनीतिक मूल्य भी जीयेंगे।

इसमें हमें यह अर्थ नहीं निकालना चाहिए कि गांधी बदलती परिस्थितियों एवं अपने युग के बदलते हुए आर्थिक समाज से दूर रहे या उसे वह समझ नहीं सके। खूब समझते थे वे, सब कुछ उन्होंने भारतीय जनमानस की दृष्टि से देखा और परखा।

गांधी का विकास–दर्शन सत्य के सहारे अपनी सीमित आवश्यकताओं की पूर्ति करता हुआ मानव जाति को उन ऊंचाईयों तक ले जाता है जहां सब समान हों, सबका एक आदर्श हो, एक आकांक्षा हो, एक मंजिल हों और एक सत्य स्वरूप हो, जहां 'अर्थ' दर्शन के साथ–साथ 'सत्य' दर्शन भी हो और 'जीवन' दर्शन भी ।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. *पब्लिकेषन डिवीजन राष्ट्र निर्माता गांधी, सूचना व प्रसारण मंत्रालय, दिल्ली, पृ 15*
2. *एम के गांधी : ''हरिजन'' 1 मार्च 1935*
3. *एम के गांधी : ''यंग इण्डिया'' 19 जनवरी 1928*
4. *राजेन्द्र प्रसाद : गांधी की देन, पृ 49*
5. *एम के गांधी : हरिजन, जनवरी 16, 1948*
6. *कुमारप्पा, भारतनः हमारे गांव का पुर्निमाण, पृ 3*
7. *एम के गांधी : हरिजन, जनवरी 16, 1948*
8. *एम के गांधी : (हरिजन, दिसम्बर, 7, 1934)*
9. *डी0 जी. तेन्दुलकर : महात्मा, लाइफ ऑफ मोहनदास करमचन्द गांधी (बम्बई, 1951), खण्ड 11, पृष्ठ 74)*
10. *कुमारप्पा, भारतनः हमारे गांव का पुर्निमाण, पृ 3*
11. *पब्लिकेषन डिवीजन राष्ट्र निर्माता गांधी, सूचना व प्रसारण मंत्रालय, दिल्ली, पृ 11*
12. *एम के गांधी : ''हरिजन'' 23 नवम्बर, 1934*
13. *एम के गांधी : ''हरिजन'' 23 नवम्बर, 1934*
14. *पब्लिकेषन डिवीजन राष्ट्र निर्माता गांधी, सूचना व प्रसारण मंत्रालय, दिल्ली, पृ 15*
15. *एम के गांधी : ''हरिजन'' 1 मार्च 1935*
16. *एम के गांधी : ''यंग इण्डिया'' 19 जनवरी 1928*
17. *राजेन्द्र प्रसाद : गांधी की देन, पृ 49*
18. *एम के गांधी : ''नवजीवन'' 28 सितम्बर 1924*
19. *किषोरी लाल मषरुवाला : गांधी विचार दोहन, पृ 111*
20. *एम के गांधी : ''नवजीवन'' 10 अगस्त 1924*